

दलित और आदिवासी विमर्श का तुलनात्मक दृष्टिकोण

डॉ. अरविन्द कुमार

असिस्टेन्ट प्रोफेसर हिन्दी विभाग

डॉ. हरीसिंह गौर वि. वि. सागर म.प्र.

समकालीन विमर्श में दलित और आदिवासी विमर्श की खूब चर्चा हुई और दोनों के अपने मूल्य हैं। दोनों विमर्श अपने-अपने समाज के समस्याओं, परिस्थितियों, बिडम्बनाओं को लेखन के माध्यम से समाज के सम्मुख रखने का अनवरत तरीके से प्रयासरत् हैं। आदिवासी समाज का लेखन आदिवासी लेखक के अतिरिक्त गैर-आदिवासी लेखक भी खूब लिख रहे हैं, उसी तरह दलित साहित्य का लेखन भी दलित लेखक के साथ-साथ गैर-दलित लेखक भी लिख रहे हैं। यदि आदिवासी साहित्य दलित आदिवासी समाज का दस्तावेज है तो दलित साहित्य दलित समाज का दस्तावेज है। समकालीन विमर्शों में दलित और आदिवासी विमर्श अपने-अपने अस्मिता की स्थायित्व चाहते हैं। दलित समाज की अपनी परम्परा, संस्कृति है तो आदिवासी समाज की अपनी। दोनों की भिन्न-भिन्न अस्मिताएँ हैं। श्री प्रकाश मिश्र के शब्दों में कुछ विचारकों ने आदिवासियों से जुड़े लेखन को दलित लेखन में ही सम्मिलित कर लिया है। यह गलत है। दलित लेखन यदि हाशिये का लेखन है तो आदिवासी लेखन हाशिये के भी हाशिये का लेखन है। फिर उसकी समस्याएँ लोकेल और वातावरण ही नहीं, पर्यावरण तक भी भिन्न है। दलित लेखन में जहाँ द्वन्द्व की जटिलता नहीं है, लेकिन इनमें जटिलता ही जटिलता है। दलित वे हैं जो हिन्दू समाज में अनाचारियों के रूप के अस्पृश्य रहे हैं। आदिवासी हिन्दू-ईसाई और कहीं-कहीं मुसलमान भी हैं। स्वयं अपना मत लेकर चलने वाले भी हैं। वे अपने भीतर भरसक वर्ण-व्यवस्था के शिकार नहीं हैं।¹ आदिवासी समाज का जीवन जल, जंगल और जमीन पर आधारित है। वन के सन्दर्भ में डॉ. सुरेश उजाला टिप्पणी करते हैं—

‘वन आदिवासी समाज की धरोहर रही है। वनों की सुरक्षा से आदिवासियों की अर्थव्यवस्था की गति तथा संस्कृति को गरिमा मिलती है। वन सदैव आदिवासियों के पोषक रहे हैं, जिनसे उन्हें प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लाभ मिलता रहा है। प्रत्यक्ष रूप में जैसे जलाने की लकड़ी, जानवरों को चारा, मकान बनाने के लिए लकड़ी की प्राप्ति, खाद, गोंद, शहद, कत्था, बांस व बेंत जड़ी-बूटियाँ